Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
June 2024 5(6), 952–958

STATUS OF MUSLIM WOMEN IN INDIA: A COMPREHENSIVE STUDY

भारत में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति: एक व्यापक अध्ययन

Shabana Anjum [1]

[1] Department of History, Purnia University (Bihar)

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i6.2024.4465

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: Today, Muslims – who make up 12 per cent of India's total population – are India's largest minority community. Islam came to the Indian subcontinent at various times and was assimilated in various ways. Nevertheless, Muslim rule lasted for nearly eight centuries, leaving a profound impact on India's history, culture, politics and administration. In 712 AD, the Arab armies of Muhammad bin Qasim conquered a part of Balochistan, and reached the borders of Sindh. In Kashmir in the fourteenth century, Sufi orders from Persia and Central Asia combined local traditions with Islamic messages such as spirituality, equality and tolerance. The Rishi movement then emerged as a popular social discontent against the norms of Brahmanic society. In western India, the Dalit classes, attracted by Islam's message of equality, embraced Sunni Islam, while other intermediate castes embraced Shiism. In South India, the influence of Muslim traders and their intermarriages led to the spread of Islam after the seventh century. After the Delhi Sultanate in 1192 AD, a quarter of India's population became Muslim.

Hindi: आज, मुसलमान – जो भारत की कुल जनसंख्या का 12 प्रतिशत हैं – भारत का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय हैं। इस्लाम भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न समयों में आया और इसे कई तरह से आत्मसात किया गया। फिर भी, मुस्लिम शासनों का राज लगभग आठ शताब्दियों तक चला, जिससे भारत के इतिहास, संस्कृति, राजनीति और प्रशासन पर गहरा प्रभाव पड़ा। 712 ईस्वी में मोहम्मद बिन कासिम की अरबी सेनाओं ने बलूचिस्तान के एक हिस्से को जीत लिया, और सिंध की सीमा तक पहुंचे। चौदहवीं सदी में कश्मीर में, फारस और मध्य एशिया से आई सूफी आदेशों ने स्थानीय परंपराओं को इस्लामी संदेशों जैसे आध्यात्मिकता, समानता और सहनशीलता से जोड़ा। इसके बाद ऋषि आंदोलन ब्राह्मणिक समाज के मानदंडों के खिलाफ लोकप्रिय सामाजिक असंतोष के रूप में उभरा। पश्चिमी भारत में, दलित वर्गों ने इस्लाम के समानता के संदेश को आकर्षित पाकर सुन्नी इस्लाम को अपनाया, जबकि अन्य मध्यवर्ती जातियों ने शिया धर्म को अपनाया। दक्षिण भारत में, मुस्लिम व्यापारियों का प्रभाव और उनके आपसी विवाहों के कारण इस्लाम का प्रसार सातवीं सदी के बाद हुआ। 1192 ईस्वी में दिल्ली सल्तनत के बाद, भारत की एक चौथाई आबादी मुस्लिम बन गई।

1. प्रस्तावना

इसलिए, मुसलमान भारत में एक समान और एकजुट समुदाय नहीं हैं। भारतीय मानवशास्त्र सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में 350 से अधिक क्षेत्रीय या जातीय-भाषाई मुस्लिम समूह मौजूद हैं। भारत के अधिकांश मुसलमान सुन्नी हैं, जो मुख्य रूप से उत्तरी भारत में होते हैं, जबकि एक अनुमान के अनुसार, लगभग 10-15 प्रतिशत भारतीय मुसलमान शिया हैं। सुन्नी इस्लाम के चार प्रमुख स्कूल हैं – हनफी, हम्बली, मलिकी और शाफई। शिया अपने स्वयं के कोडिफाइड कानूनों का पालन करते हैं, जो सुन्नी व्याख्याओं से भिन्न होते हैं। मुसलमानों के बीच सांस्कृतिक विविधता – जिसमें विचारधाराएँ, आदतें, भाषाएँ और परंपराएँ शामिल हैं – और इस्लाम का समय के साथ असमान प्रसार, भारत में मुस्लिम समुदायों के भीतर मुस्लिम कानूनों और रिवाजों की विविधता का कारण बना है। यह सामान्य विचार है कि मुस्लिम परिवारों पर मुस्लिम कानून या शरीअत का प्रभाव होता है। इसका अर्थ यह है कि मुस्लिम परिवार और समुदाय किसी न किसी तरीके से गैर-मुस्लिमों से अलग होते हैं। हालांकि, यदि हम इसे अधिक गहराई से देखें, तो यह धारणा सही नहीं प्रतीत होती।

कानून के संदर्भ में, महिलाओं का पारिवारिक संपत्ति पर अधिकार – जो कि शास्त्रीय इस्लामी कानून से संबंधित महिलाओं के पक्ष में एक प्रावधान है – सामाजिक पूर्वाग्रहों और महिलाओं के संपत्ति अधिकारों के प्रति प्रतिरोध के कारण प्रायः लागू नहीं होता। फिर भी, बिहार जैसे स्थानों में मुस्लिम समुदायों ने हिंदू दहेज प्रथा को अपनाया है, और केरल में मॉपला मुसलमानों द्वारा भी यह देखा जाता है। असम के मुसलमानों ने हिंदू विवाह परंपराओं को अपनाया है, जैसे कि विवाह तिथियों का निर्धारण पंडित या पंचांग से परामर्श करके और दूल्हा-दुल्हन दोनों को धार्मिक स्नान कराना, जो हिंदू प्रथा से लिया गया है। उत्तर प्रदेश के सक्का समुदाय ने विवाह समारोह में पारंपरिक हिंदू अग्नि संस्कार को मुस्लिम परंपराओं के साथ जोड़ा है। यह विविधता यह संकेत देती है कि मुस्लिम समुदायों ने या तो शरीअत के पालन से सख्ती से दूर किया है, या अपनी पारंपरिक प्रथाओं को इसके साथ मेल करके अपने मुस्लिम पहचान को बनाए रखा है, जो प्रमुख (हिंदू) संस्कृति के करीब है। हिंदू और मुस्लिम सांस्कृतिक प्रथाओं का यह मिश्रण भारतीय समग्र संस्कृति की एक विशिष्ट विशेषता है और इस धारणा को नकारता है कि मुस्लिम समुदायों या मुस्लिम महिलाओं की स्थिति केवल इस्लाम द्वारा परिभाषित होती है। इस प्रकार, इस्लाम व्यवहार में समृद्ध और विविध है, और इसकी आचार्यिक धार्मिकता से कहीं अधिक समाहित है।

2. लिंग के विचार

सामाजिक सुधार पर बहस ने मुसलमानों से विभिन्न प्रतिक्रियाएँ प्राप्त कीं। महिलाओं के प्रति आधुनिक दृष्टिकोणों पर पश्चिमी देशों की इस्लाम पर आलोचनाओं का प्रभाव था – विशेषकर पर्दा प्रथा, महिलाओं की शिक्षा की कमी, और मुस्लिम कानून में उनके साथ भेदभाव। आधुनिकतावादियों ने पारंपरिक लिंग भूमिकाओं को समाप्त करने, मुस्लिम कानून में सुधार और समान अधिकारों के सिद्धांत पर मुस्लिम महिलाओं के लिए सार्वजनिक भूमिका बढ़ाने का समर्थन किया। महिलाओं की शिक्षा के प्रति चिंता को नए प्रिंट मीडिया में भी दर्शाया गया। ख्वाजा अल्ताफ हुसैन हाली के 1905 में प्रकाशित उपन्यास चुप की दाद (Voices of the Silent) में महिलाओं के उत्पीड़न की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया। हाली ने महिला शिक्षा का समर्थन किया, हालांकि उनका मानना था कि यह शिक्षा घर पर दी जानी चाहिए। मुमताज़ अली और उनकी पत्नी मोहम्मदी बेगम ने तहज़ीब-उन्निस्वां (महिलाओं का सुधारक) नामक एक अखबार की स्थापना की, जो महिला शिक्षा, विवाह की उम्र, विवाह में लड़की की सहमति, बहुविवाह, विवाह में महिलाओं की भूमिका और पर्दा जैसे मुद्दों को उठाता था। बंगाली वकील और The Spirit of Islam (1922) के लेखक अमीर अली ने बहुविवाह का विरोध किया और मुस्लिम कानून में सुधार की आवश्यकता पर जोर दिया। बांग्लादेश की रोकिया शखावत होसैन (जन्म 1880) – जो सामाजिक सुधार की समर्थक थीं – ने महिला अलगाव की 'अत्यधिक बेतुकी' प्रथाओं का विरोध किया। वह उन कुछ व्यक्तियों में से थीं जिनकी चिंताओं में गरीब, अनपढ़ मुस्लिम महिलाओं की स्थिति शामिल थी।

व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयासों के बावजूद, मुस्लिम महिलाओं के लिए शिक्षा के संदर्भ में आधुनिक दृष्टिकोणों में विरोधाभास था। सैयद अहमद खान ने मुसलमानों से आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा प्राप्त करने की अपील की। उनका इस्लामिक एंग्लो-ओरिएंटल कॉलेज बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बन गया। हालांकि, मुस्लिमों के लिए आधुनिक शिक्षा के उनके दृष्टिकोण में महिलाओं का समावेश नहीं था। इस महान मुस्लिम समाज सुधारक के अनुसार, "जब तक एक बड़ी संख्या में मुस्लिम पुरुषों ने अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं कर ली, तब तक मुस्लिम महिलाओं के लिए कोई संतोषजनक शिक्षा नहीं हो सकती।" प्रसिद्ध कवि और दार्शनिक मोहम्मद इकबाल भी महिला शिक्षा के विचार के प्रति नकारात्मक थे। उनके अनुसार, यूरोपीय महिला मताधिकार समर्थक 'अनावश्यक महिलाएँ' थीं, जिन्हें 'बलात्कारी विचारों' के बजाय बच्चों को जन्म देने के लिए मजबूर किया गया था। उलेमा (मुस्लिम धर्मशास्त्री) वह थे जो क़ुरान की आयतों और शरीअत का विश्लेषण करते थे। उलेमा का महिलाओं पर दृष्टिकोण पारंपरिक इस्लामी परंपरा पर आधारित था, जिसमें महिलाओं को फिटना (संभावित अशांति) के रूप में देखा जाता था। इसके अनुसार, महिलाओं के पुरुषों के साथ सामाजिक संपर्क को नियंत्रित किया जाता था, जो प्रभावी रूप से महिला यौनिकता पर नियंत्रण और सार्वजनिक जीवन से महिला का अलगाव था। आधुनिकतावादियों की तरह, उलेमा ने भी महिला शिक्षा का समर्थन किया, लेकिन केवल धार्मिक शिक्षा (क़ुरान), पारिवारिक मूल्यों और महिलाओं की नैतिकता पर ध्यान केंद्रित करने तक। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि उनका मानना था कि मुस्लिम परिवार यौनिक पदानुक्रम और महिलाओं के सामाजिक नियंत्रण पर आधारित होता है। हालांकि उलेमा ने पुरुषों और महिलाओं के लिए विभिन्न भूमिकाओं का विवरण दिया, ये कोई जैविक भेदभाव पर आधारित नहीं थे। मौलाना अशरफ अली थानवी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक बेहेश्ती ज़ेवर (स्वर्गीय आभूषण) में महिलाओं के घरेलू कर्तव्यों का विस्तृत विवरण दिया, जबकि उन्होंने पुरुषों और महिलाओं की समान मानसिक और बौद्धिक क्षमता को स्वीकार किया। थानवी का मानना था कि लड़कों और लड़कियों को समान शिक्षा मिलनी चाहिए। 1906 में उन्होंने लिखा, "कुछ समय बाद, अगर अल्लाह की मर्जी हुई, तो तुम ... एक मौलवी बनोगी – यानी अरबी के विद्वान ... तुम एक शिक्षित व्यक्ति का दर्जा प्राप्त करोगी, और तुम न्यायिक राय देने में सक्षम हो सकोगी, जैसा कि विद्वान लोग करते हैं। तुम लड़कियों को अरबी पढ़ाना शुरू करोगी, जैसे विद्वान लोग [सिक] करते हैं ... तुम जो मार्गदर्शन अपनी उपदेशों और रायों से दोगी, इसके लिए तुम्हें वही पुरस्कार मिलेगा जो उन सभी को मिलेगा, जिन्हें तुमने अपनी शिक्षाओं और पुस्तकों से मार्गदर्शन दिया।" उलेमा का दृष्टिकोण क्रांतिकारी नहीं था। जबकि इसने महिलाओं की सार्वजनिक जीवन में भागीदारी को सीमित किया और परिवार के महत्व को बढ़ावा दिया, इसने महिलाओं को पुरुषों से कमतर नहीं माना।

आधुनिकतावादी दृष्टिकोण से अलग, उलेमा का दृष्टिकोण पश्चिमी आलोचना से स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ था। बीसवीं सदी की शुरुआत में 'इस्लामी' दृष्टिकोण ने महिलाओं को इस्लाम द्वारा दी गई स्थिति के आधार पर अन्य धर्मों से श्रेष्ठ माना। इसके प्रमुख समर्थक मौलाना अबुल आला मौदूदी ने अपनी पुस्तक पर्दा और इस्लाम में महिलाओं की स्थिति (1935) में पश्चिमी महिलाओं पर 'स्वतंत्रता' के अत्यधिक हानिकारक प्रभावों की आलोचना की और इसे मुस्लिम महिलाओं के लिए अप्रासंगिक बताया। उनकी आलोचना पश्चिमीकरण के intrusive और हानिकारक प्रभावों के खिलाफ थी, न कि भारत में मुस्लिम महिलाओं की वास्तविक स्थितियों पर आधारित। इस्लामवादी दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित था कि महिलाओं को पुरुषों से स्वाभाविक रूप से कमतर माना जाता है। सार्वजनिक-निजी विभाजन इस 'स्वाभाविक' यौन पदानुक्रम की संरचनात्मक विशेषता थी। मौदूदी ने 'महिला हीनता' को महिला की 'स्वाभाविक' प्रकृति – यानी भावनात्मक, अव्यावहारिक और अत्यधिक संवेदनशील – से जोड़ा। इस्लामवादियों के लिए समानता का सिद्धांत निंदनीय था; वे सेक्सों के सामाजिक मिलन और महिलाओं की किसी भी प्रकार की स्वायत्तता के खिलाफ थे। उलेमा (और थानवी) की तरह जिन्होंने पुरुषों और महिलाओं के बीच किसी मानसिक या बौद्धिक अंतर को स्वीकार नहीं किया था, इस्लामवादियों ने महिलाओं को सीखने या ज्ञान उत्पन्न करने के लिए अक्षम घोषित किया। इस्लामवादी व्यवस्था महिलाओं को केवल घर तक सीमित करती थी, पर्दे का समर्थन करती थी और घरेलू जीवन को आदर्श मानती थी; महिलाओं के लिए एकमात्र उपयुक्त शिक्षा उन्हें अच्छे घर बनाने वाली और मां बनने के उनके पूर्व निर्धारित कर्तव्य में सहायता करने के लिए मानी जाती थी।

3. शिक्षा और विधायिका

धार्मिक परंपराओं, सामाजिक पूर्वाग्रह और वर्ग/लिंग भेदभाव के दबावों के बावजूद, बीसवीं सदी के प्रारंभ में मुस्लिम महिलाओं ने पारंपरिक भूमिकाओं के अलगाव से बाहर निकल कर आत्म-सजग व्यक्तित्व के रूप में उभरने में सफलता हासिल की और सार्वजनिक मामलों में अपनी भूमिका बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित रहीं। महिलाओं की शिक्षा का विषय सभी समुदायों, including मुसलमानों, द्वारा उठाया गया था। यह विषय सबसे पहले 1896 में एक पुरुष-प्रधान मुस्लिम शैक्षिक कांग्रेस में उठाया गया था, और उसके बाद के वर्षों में मुस्लिम महिलाओं ने महिला शिक्षा और राजनीति में भागीदारी के लिए सक्रिय प्रयास किए। 1906 में, शेख अब्दुल्ला और उनकी पत्नी वाहीद जहान बेगम ने अलीगढ़ में लड़कियों के लिए एक अलग स्कूल की स्थापना की। 1913 में, कोलकाता में 'पर्दानशीं मदरसा' – एक स्कूल जो लड़कियों के लिए अलगाव में था – की स्थापना की गई; और भोपाल की बेगम ने भी 1914 में एक लड़कियों का स्कूल स्थापित किया। मुस्लिम महिलाएं पहली बार शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश करने लगीं। फिर भी, जैसा कि एक विद्वान ने देखा, गहरे समाजिक रीति-रिवाजों को बदलना आसान नहीं था, "मद्रास के मोहम्मदन सहशिक्षा कॉलेज में लड़कियों को अपना बुर्का (पर्दा) पहनना अनिवार्य था और अलीगढ़ में पुरुष शिक्षक पर्दे के पीछे बैठते थे।" बीसवीं सदी के शुरुआत में, मुस्लिमों के लिए शिक्षा के स्तर में क्षेत्रीय भिन्नताएँ थीं, जो उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति और स्थानीय आवश्यकताओं पर निर्भर थीं। उपनिवेशी अधिकारियों की कुछ रिपोर्टों ने यह छवि बनाने की कोशिश की कि मुसलमान पश्चिमी शिक्षा के विचार का विरोध करते हैं और मुस्लिम महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा गया है। हालांकि, क्षेत्रीय समीक्षा ने इन सामान्यीकरणों का खंडन करते हुए यह दिखाया कि मुसलमानों के बीच पश्चिमी शिक्षा का स्तर उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अनुसार भिन्न था। मुस्लिम महिला शिक्षा के स्तर में बड़ी असमानताएँ थीं, हालांकि ये स्तर अन्य भारतीय महिलाओं की तुलना में स्पष्ट रूप से कम नहीं थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, केवल 0.97 प्रतिशत हिंदू लड़कियां और 0.86 प्रतिशत मुस्लिम लड़कियां मान्यता प्राप्त स्कूलों में पढ़ाई कर रही थीं, और न ही किसी हिंदू या मुस्लिम लड़की ने बॉम्बे या मद्रास में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। 1901-2 में एक अध्ययन के अनुसार, ब्रिटिश भारत में 44,695 महिला माध्यमिक छात्राएं थीं; यह संख्या हर 100,000 हिंदू लड़कियों में 27 और हर 100,000 मुस्लिम लड़कियों में 4 थी। फिर भी, उत्तर प्रदेश में केवल चार हिंदू लड़कियां माध्यमिक सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ाई कर रही थीं जबकि 28 मुस्लिम लड़कियां वहां उपस्थित थीं। 1902 में मुस्लिम लड़कियों के नामांकन के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि वे बॉम्बे, मद्रास और उत्तर प्रदेश प्रांतों में हिंदू लड़कियों से आगे थीं, जबकि बंगाल और पंजाब में पीछे थीं। जबकि मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा का स्तर इस समय आदर्श नहीं था, यह लगातार बढ़ रहा था। इसका कारण सरकारी पहल और मुस्लिम समुदायों में महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए किए गए प्रयास थे।

1916-26 में, सभी क्षेत्रों में मुस्लिम पुरुषों और महिलाओं के छात्रों के प्रतिशत में वृद्धि हुई। इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, ब्रिटिश भारत में शिक्षा में प्रगति का ज्ञापन 1916-26 ने टिप्पणी की कि, "मुस्लिम समुदाय के प्रतिशत सभी समुदायों की तुलना में अधिक अनुकूल थे, और यहां तक कि मुस्लिम लड़कियों के आंकड़े भी सभी वर्गों की महिला छात्रों के आंकड़ों से नीचे नहीं थे। यहां तक कि कॉलेज और माध्यमिक स्तर पर भी, मुस्लिमों का अनुपात अच्छी तरह से बनाए रखा गया था।" 1922-7 के आंकड़े दर्शाते हैं कि हालांकि मुस्लिम नामांकन अन्य समुदायों के औसत से कम था, बिहार, मध्य प्रांतों और उड़ीसा में लड़कियों के scholars की संख्या में वृद्धि हुई थी। यह अध्ययन बताता है कि ब्रिटिश भारत में मुस्लिम जनसंख्या (1922-7) 59.5 मिलियन थी, जो कुल जनसंख्या का 24 प्रतिशत थी; और कुल मिलाकर, मुस्लिम छात्र भी कुल जनसंख्या का 24 प्रतिशत थे। 1931 की जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि हिंदू शिक्षा दर 91.6 प्रतिशत और मुस्लिमों के लिए 93.6 प्रतिशत थी। 1937 तक, भारत में मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा की औसत दर राष्ट्रीय औसत से बढ़ चुकी थी। बीसवीं सदी के मोड़ पर सामाजिक सुधार की बहस ने महिलाओं के मुद्दों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की और महिलाओं की स्थिति में कानूनी बदलावों की आवश्यकता का आह्वान किया। एक उभरती महिला आंदोलन ने राष्ट्रीय नेतृत्व के साथ मिलकर महिलाओं के पक्ष में विधायी बदलाव लाने की कोशिश की।

1937 में शरियत अधिनियम केंद्रीय विधानमंडल द्वारा पास किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य ब्रिटिश भारत में सभी मुसलमानों के लिए कानूनों की समानता को सुनिश्चित करना था और इसमें यह स्पष्ट किया गया, "विरासत, महिलाओं की विशेष संपत्ति, वचनबद्धता, गोद लेने, विवाह, तलाक, भरण-पोषण, दहेज, अभिभावकत्व, अल्पकालिकता, अवैधता, पारिवारिक संबंध, वारिस, उपहार, विभाजन आदि के सवालों को सुलझाना। जब पक्ष मुसलमान होते हैं, तो निर्णय नियम मुस्लिम व्यक्तिगत कानून पर आधारित होंगे, भले ही इसके खिलाफ कोई परंपरा या रिवाज हो ... यह विधेयक मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों को मान्यता देता है और उन्हें परिवार की संपत्ति में भाग लेने का हक देता है, जिन्हें पारंपरिक कानून के तहत इस अधिकार से वंचित किया गया था। यह विधेयक मुस्लिम महिलाओं के लिए वही काम करता है जो मेरे सम्माननीय मित्रों श्री देसमुख, होसनानी और गुप्ता के विधेयक ने हिंदू महिलाओं के लिए किया।" केंद्रीय विधानमंडल में एक बहस में, इस अधिनियम को पारंपरिक कानून के नकारात्मक प्रभाव के रूप में जायज़ ठहराया गया, जो मुस्लिम महिलाओं को उनकी विरासत का हिस्सा लेने या इस्लामिक कानून के तहत तलाक के अधिकार का प्रयोग करने से रोकता था। विधेयक "सार्वजनिक रुचि पैदा करने में सफल रहा और मुस्लिम समुदाय ने इसका समर्थन करने का आह्वान किया, जिससे महिलाओं के हितों को आगे बढ़ाने और समुदाय को एकजुट करने का दावा किया गया।" समाजिक सुधार के इस समय में, मुस्लिम महिला समूहों ने दोनों विधेयकों का समर्थन किया और महिलाओं के मुद्दों पर सार्वजनिक जागरूकता को बढ़ावा दिया, हालांकि ये विधेयक, महिला हितों के लिए होते हुए भी, तलाक या विरासत जैसे मामलों में पुरुषों के अधिकारों को बनाए रखते थे। यह आश्चर्यजनक नहीं था क्योंकि यहां पर व्यक्तिगत महिला अधिकार सामूहिक या पारिवारिक संबंधों से ऊपर नहीं हो सकते थे। फिर भी, यह तथ्य कि परिवार में महिलाओं के अधिकारों पर सार्वजनिक बहस हो रही थी, मुस्लिम महिलाओं की स्थिति और उनके उभरते महिला आंदोलन में भागीदारी को मजबूत करता था।

4. स्वतंत्रता से पूर्व की परिस्थितियाँ

बीसवीं सदी के शुरुआती दशक में एक उभरते महिला आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने, महिलाओं के विवाह की उम्र बढ़ाने और पर्दा प्रथा को हटाने के लिए अभियान चलाया। स्वतंत्रता से पहले मुस्लिम महिलाओं की स्थिति अन्य समुदायों की महिलाओं से ज्यादा अलग नहीं थी। भेदभाव जाति, वर्ग और क्षेत्र के आधार पर था, न कि धर्म के आधार पर। पर्दा सभी समुदायों में एक सामान्य प्रथा थी, लेकिन यह विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों में अलग-अलग था। मुस्लिम महिलाओं के अभिजात वर्ग ने पारंपरिक प्रथाओं और महिलाओं के इस्लामी अधिकारों को लागू न करने के खिलाफ तर्क दिया, और पर्दा जैसी प्रथाओं की निंदा की। भोपाल की बेगम, जो महिला शिक्षा की अग्रणी थीं, ने यह विचार खारिज किया कि पर्दा प्रथा को धार्मिक स्वीकृति प्राप्त है। 1929 में, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए, उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपना पर्दा हटा दिया। उसी बैठक में पर्दा प्रथा के खिलाफ एक प्रस्ताव पारित किया गया। 1930 में, मुस्लिम शैक्षिक सम्मेलन ने यह देखा कि पर्दा प्रथा घट रही थी, और इसके घटने का कारण आर्थिक था; हैदराबाद के निजाम और मोहम्मद अली जिन्ना जैसे नेताओं ने पर्दा प्रथा के खिलाफ सार्वजनिक रूप से अपनी स्थिति जाहिर की। इसी बीच, त्रावणकोर की महारानी ने अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में अपने संबोधन में मुस्लिम महिलाओं के लिए तलाक और विरासत के अधिकारों के फायदों को स्वीकार किया, लेकिन उन्होंने महसूस किया कि पर्दा प्रथा इन अधिकारों के वास्तविककरण में बाधा डाल रही थी। बीसवीं सदी के प्रारंभ में पूरे भारत में 'पर्दा क्लबों' की स्थापना भी हुई। मुस्लिम महिलाओं के लिए मंचों ने ऐसे मुद्दों पर चर्चा का एक स्थान प्रदान किया जो पहले महिलाओं के घर में सीमित रहने के कारण साझा करना असंभव था। अत्तिया बेगम ने 1905 में अलीगढ़ में मुस्लिम महिला सम्मेलन की स्थापना की। अखिल भारतीय मुस्लिम महिला सम्मेलन, जो सभी मुस्लिम महिलाओं के हितों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता था, 1907 में लाहौर में स्थापित हुआ। लाहौर में 1917 के सम्मेलन में पूरे देश से 400 मुस्लिम महिला प्रतिभागी उपस्थित हुईं। 1919 में अंजुमन-ए-ख्वातीन-डेक्कन (महिला संघ) की स्थापना की गई। इन बैठकों में महिलाओं की शिक्षा के पक्ष में, बहुपत्नी प्रथा और पर्दा प्रथा के खिलाफ नियमित रूप से प्रस्ताव पारित किए गए। हालाँकि, महिला आंदोलन का नेतृत्व अभिजात वर्ग की महिलाओं द्वारा किया गया था, फिर भी मुस्लिम महिलाओं के लिए यह संभव था कि वे अन्य वर्गों की महिलाओं के साथ अपने अनुभवों को साझा कर सकें और विचारों को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने का काम कर सकें। महिला आंदोलन और उसके नेताओं के भारतीय राजनीतिक नेतृत्व के करीब होने और राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा महिला मुद्दों के महत्व को पहचानने के कारण, महिला आंदोलन को मजबूती मिली। इस आंदोलन की सफलता ने भारतीय महिलाओं के मताधिकार के संघर्ष को आसान बनाया। 1921 तक, महिलाओं को केंद्रीय और राज्य विधानसभाओं में चुनाव लड़ने का अधिकार मिल चुका था, हालांकि महिलाओं का मतदाता के रूप में दर्जा उनके पति की संपत्ति पर निर्भर था। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत, 66 लाख महिलाएं केंद्रीय सभा में कुल 250 सीटों में से 9 सीटों और राज्य प्रांतीय सभा में कुल 150 सीटों में से 6 सीटों के लिए वोट देने के योग्य थीं।

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने सभी प्रकार के भेदभावपूर्ण बाधाओं को समाप्त करने की मांग की और महिलाओं के लिए सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की वकालत की। 1930 के दशक में मुस्लिम लीग के पुनः उभार के साथ, अखिल भारतीय मुस्लिम महिला सम्मेलन फीका पड़ गया। 1932 में, लीग ने महिलाओं के मताधिकार, प्रतिनिधित्व और सामाजिक समानता के पक्ष में एक प्रस्ताव पारित किया। जैसा कि एक विद्वान ने कहा, 'यह महिलाओं के प्रति लीग के दृष्टिकोण में एक बड़ा बदलाव नहीं था', बल्कि यह लीग की राजनीतिक प्राथमिकताओं (और 'महिला वोट' के लिए अपील) के अनुरूप था। इसने देशभर में महिला शाखाओं की स्थापना की और 1946 के चुनावों में उसकी सफलता का एक कारण मुस्लिम महिलाएं थीं जिन्होंने पार्टी को वोट दिया। भारतीय महिला आंदोलन पर कांग्रेस पार्टी और मुस्लिम लीग के पुरुष सदस्य के बीच उभरते राजनीतिक अंतर का कोई असर नहीं

पड़ा। बेगम शाहनवाज ने हिंदू और मुस्लिम महिलाओं से अपील की कि वे सभी भारतीय महिलाओं के लाभ के लिए एक साथ काम करें। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, भारतीय महिला संघ और राष्ट्रीय महिला परिषद ने महिला मताधिकार को समुदाय आधारित तरीके से विभाजित करने के विचार का विरोध किया। तीनों संगठनों ने इसके बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री को एक टेलीग्राम भेजा, जिसमें वे पृथक मतदाता प्रणाली की निंदा कर रहे थे। 1931 में, बेगम शाहनवाज ने महिलाओं की एकता की आवश्यकता को फिर से दोहराया, 'चाहे पुरुष जो कुछ भी करें।' 1932 में लखनऊ में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन सत्र में (विशेष रूप से मुस्लिम) लड़कियों की शिक्षा के पक्ष में एक प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्तावों में महिलाओं के लिए अलग-अलग मतदाता प्रणाली, अस्पृश्यता और एकतरफा (यानी मुस्लिम पुरुषों के) तलाक के अधिकार के खिलाफ और समुदायिक एकता के पक्ष में प्रस्ताव पारित किए गए। 1946 के चुनावों में, बेगम शाहनवाज और बेगम शायस्ता इक़रामुल्ला केंद्रीय संविधान सभा के लिए चुनी गईं। 1947 तक, ये दोनों महिलाएं – जो भारतीय महिला आंदोलन का एक अभिन्न और मुखर हिस्सा रही थीं – मुस्लिम लीग से जुड़ी थीं। न तो लीग और न ही पाकिस्तान की मांग ने महिलाओं के अधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया, हालांकि जिन्होंने लीग और पाकिस्तान के पक्ष में मतदान किया, वे मानते थे कि महिलाओं को नए समाज में उनके योगदान के अनुसार उचित स्थान मिलेगा। मुख्यधारा का इतिहास राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम और पाकिस्तान की मांग को 'धार्मिक विभाजन' के रूप में प्रस्तुत करता है, लेकिन पाकिस्तान की मांग एक ऐतिहासिक वास्तविकता है, हालांकि इसकी प्रकृति और जो दबाव इसे उत्पन्न और बनाए रखते थे, वे इससे कहीं अधिक जटिल और सूक्ष्म थे, जिन्हें केवल 'धार्मिक' के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

5. स्वतंत्रता पश्चात आंदोलन

स्वतंत्र भारत का संविधान राज्य और उसके नागरिकों के बीच रिश्ते को फिर से परिभाषित करता है। नागरिक के रूप में व्यक्ति का विचार, जिसमें बुनियादी अधिकारों के साथ-साथ सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का अधिकार भी शामिल है, यह पूर्व के अधिनायकवादी संरचनाओं से एक बड़ा परिवर्तन था। विभाजन की कड़वाहट के बाद सभी भारतीयों के लिए एक सामान्य भविष्य और बहुस्तरीय अतीत का धर्मनिरपेक्ष विचार एक शक्तिशाली अपील करता है। हालांकि, अधिकांश अशिक्षित और आर्थिक रूप से वंचित मुस्लिम समुदायों के लिए धर्मनिरपेक्ष भारतीय पहचान के साथ खुद को पहचानना कठिन था, क्योंकि उनकी धार्मिक पहचान संदेहास्पद थी, वे साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार थे, उन्हें हिंदी सीखने की जरूरत थी जबकि उर्दू को छोड़ा जा रहा था, और जब हिंदू दक्षिणपंथी विचारधारा ने मुसलमानों को राष्ट्रीय एकीकरण में मुख्य बाधाएं माना और मुस्लिम सांस्कृतिक पहचान पर परोक्ष आक्षेप लगाए। इसके अतिरिक्त, मुस्लिम महिलाओं को एक अल्पसंख्यक समुदाय में होने के कारण और भी कठिनाई का सामना करना पड़ा। जैसे अधिकांश भारतीय महिलाएं, मुस्लिम महिलाएं भी आर्थिक संसाधनों, शिक्षा और रोजगार तक पहुंच की लड़ाई में अन्य भारतीय महिलाओं के साथ शामिल हुईं। महिलाओं के आंदोलन का impetus विभाजन के बाद कुछ हद तक फैला हुआ था। इसका साम्प्रदायिक एकजुटता सराहनीय थी, फिर भी परिवर्तन विशेष रूप से मुस्लिम महिलाओं के लिए कठिन था। राष्ट्रीय या दूरदृष्टि नेतृत्व के बिना, मुस्लिम महिलाओं की आवाज़ें और अनुभव पुरुष मुस्लिमों द्वारा हड़प लिए गए, जो समुदाय का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते थे। इन पुरुषों का राजनीतिक अवसरवाद और राज्य के कार्यक्रमों की विफलता ने मुस्लिम महिलाओं को आर्थिक और शैक्षिक रूप से गरीब छोड़ दिया। व्यक्तिगत कानून (जैसे पारिवारिक संबंध, विवाह, तलाक, विरासत, अभिभावकता के अधिकार आदि) महिलाओं के आंदोलन के लिए एक विवादित क्षेत्र है, साथ ही हिंदू और मुस्लिम परंपरावादियों के लिए भी। यह न केवल विवाह और पारिवारिक संबंधों में पुरुषों और महिलाओं के बीच रिश्ते को परिभाषित करता है, बल्कि महिलाओं और राज्य के बीच रिश्ते को भी चिह्नित करता है।

स्वतंत्र भारत में नागरिक और आपराधिक कानून धर्मनिरपेक्ष हैं, लेकिन व्यक्तिगत कानून संबंधित धार्मिक कानूनों द्वारा शासित हैं। इसके अनुसार, मुस्लिम महिलाएं मुस्लिम व्यक्तिगत (परिवार) कानून के तहत आती हैं। हिंदू कोड विधेयक और शाह बानो विवाद ने मुस्लिम व्यक्तिगत कानून को फिर से प्रमुख बना दिया, जो 1937 के शरियत एक्ट और 1939 के मुस्लिम विवाहों के विघटन अधिनियम के बाद से किसी भी विधान परिवर्तन के अधीन नहीं था। स्वतंत्रता के बाद भारत में महिलाओं के लिए कानूनों का विरोध हिंदू और मुस्लिम परंपरावादियों द्वारा किया गया था। हिंदू कोड विधेयक, जिसने हिंदू महिलाओं को तलाक का अधिकार दिया और अंतर-जाती विवाह और एकपत्नीव्रति की अनुमति दी, ने एक क्रॉस-साम्प्रदायिक पितृसत्तात्मक सहयोग को दिखाया, जो किसी भी महिला-अधिकार कानून का विरोध करता था। विशेष विवाह अधिनियम, 1952, जिसने दो भारतीयों को उनके धर्म को त्यागे बिना विवाह करने की अनुमति दी, ने हिंदू और मुस्लिम संसद सदस्यों से मजबूत विरोध उत्पन्न किया। इन बहसों ने महिलाओं के अधिकारों पर बहस को एक ऐसे दृष्टिकोण में बदल दिया, जहां व्यक्तिगत कोड साम्प्रदायिक 'पहचान' से जुड़े हुए थे। 1973 में, जब तलाकशुदा महिलाओं के रख-रखाव के अधिकारों के संबंध में अपराधी प्रक्रिया संहिता में संशोधन किया गया, तो शब्द 'पत्नी' को 'तलाकशुदा पत्नी' में बदल दिया गया। इसने मुस्लिम लीग से विरोध उत्पन्न किया, जिनके सदस्यों ने तर्क किया कि यह संशोधन मुस्लिम व्यक्तिगत कानून का उल्लंघन करता है। यह संशोधन मुस्लिम महिलाओं को धारा 125 के प्रावधानों से बाहर कर देता है यदि उन्हें पहले ही मुस्लिम कानून के तहत भुगतान मिल चुका हो। हालांकि, एक बाद के फैसले (बाई तहिरा बनाम अली हुसैन) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि, "रिवायत या व्यक्तिगत कानून की आवश्यकताओं द्वारा दिए गए काल्पनिक भुगतान को रख-रखाव दर में कमी के रूप में माना जाएगा, लेकिन यह दर को समाप्त नहीं कर सकता, जब तक यह एक उचित विकल्प न हो।" तीन तलाक (एक ही बैठक में तीन बार तलाक कहने द्वारा एकतरफा तलाक) मुस्लिम कानून में महिलाओं के लिए भेदभाव का एक और क्षेत्र है। मौखिक तलाक का खतरा (जो पुरुषों को दिया गया है) मुस्लिम महिलाओं के खिलाफ एक निरंतर कानूनी और मानसिक खतरा होता है। इसे हाल ही में एक सेमिनार में

राष्ट्रीय महिला आयोग (NCW) की सदस्य सैयदा सैयदैन हमीद ने स्वीकार किया था, जब उन्होंने व्यक्तिगत कानूनों में संशोधन की आवश्यकता की बात की थी ताकि मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं को कम किया जा सके।

1986 में, शाह बानो, एक 73 वर्षीय मुस्लिम महिला को उसके पति ने 43 साल की शादी के बाद अपने घर से निकाल दिया, जब उसने तीन तलाक का इस्तेमाल किया। 1977 में शाह बानो के पति ने 200 रुपये की रख-रखाव राशि रोक दी, जिसके बाद उसने अपराधी प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत 500 रुपये की रख-रखाव के लिए आवेदन किया। उसके बाद, उसके पति ने उसे तलाक दे दिया और 3000 रुपये का अंतिम समझौता भुगतान किया। एक न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उसे 25 रुपये (लगभग 0.50 अमेरिकी डॉलर) की राशि का भुगतान करने का आदेश दिया, जिसे बाद में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने बढ़ाकर 179.20 रुपये कर दिया। शाह बानो के पूर्व पति ने सुप्रीम कोर्ट में अपील की और तर्क किया कि मुस्लिम व्यक्तिगत कानून पूर्व पतियों को अपनी पूर्व पत्नियों को रख-रखाव देने के लिए बाध्य नहीं करता है। सुप्रीम कोर्ट ने उसकी अपील को खारिज कर दिया और अपराधी प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत रख-रखाव आदेश को बरकरार रखा। फिर, संसद ने मुस्लिम महिला संरक्षण अधिकार पर तलाक विधेयक पारित किया – जिसने मुस्लिम महिलाओं को संविधानिक कानून के तहत रख-रखाव का अधिकार नहीं दिया। यह निर्णय और उसके बाद मुस्लिम महिलाओं के विधेयक ने व्यक्तिगत कानून के मुद्दे पर महिलाओं के समूहों द्वारा व्यापक संगठन या गतिशीलता को उत्पन्न किया। यह संविधानिक कानून और धार्मिक कानूनों के बीच के अंतर को भी उजागर करता है जो इस श्रेणी के आधार पर भेदभाव करते हैं। कांग्रेस और बीजेपी जैसे राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं के अधिकारों के इस बहस को अपने राजनीतिक लाभ के लिए इस्तेमाल किया गया, हालांकि यह मुद्दा महिलाओं की वास्तविक भलाई से अधिक था। जैसे ही चुनावी राजनीति का हिस्सा बना, यह सवाल न केवल महिलाओं के अधिकारों का, बल्कि समाज में उनकी जगह का भी बन गया।

6. अंत में

एक नज़र में देखा जाए तो मुस्लिमों का सामाजिक-आर्थिक स्तर बहुत कमजोर है, और उनका सार्वजनिक जीवन में भी सीमित प्रतिनिधित्व है। भारत की 101.59 मिलियन मुस्लिम जनसंख्या में से 50 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करते हैं, और उनकी मासिक आय 150 रुपये या उससे कम है। हिंदू, जो जनसंख्या का 82.2 प्रतिशत हैं, वे कुल कुलीन वर्ग के 85.3 प्रतिशत हैं; जबकि ईसाई, जो जनसंख्या का 2.6 प्रतिशत हैं, कुलीन वर्ग का 3.5 प्रतिशत हैं; जैन, जो 0.5 प्रतिशत हैं, कुलीन वर्ग का 2.8 प्रतिशत हैं; वहीं मुस्लिम, जो 11.2 प्रतिशत हैं, केवल 4.5 प्रतिशत कुलीन वर्ग का हिस्सा हैं – और इस आंकड़े में महिलाएँ सबसे खराब स्थिति में हैं। इसके अलावा, मुस्लिमों का संसद और राज्य विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व घट रहा है। 1982 में लोकसभा (संसद का निचला सदन) में 46 मुस्लिम सदस्य थे, जो 1991 के चुनावों में घटकर 26 रह गए थे। हाल ही में, इन समस्याओं पर मुस्लिम समुदाय के भीतर चर्चा हुई है। जनवरी 1992 में मुस्लिम इंटेलेक्चुअल्स फोरम की पहली बैठक में सरकार, राजनीतिक दलों, मीडिया और उलेमाओं से भारत में मुस्लिमों की स्थिति पर ध्यान केंद्रित करने की मांग की गई। इस बैठक में मुस्लिम राजनीतिक और धार्मिक नेताओं की प्राधिकृति पर सवाल उठाया गया और मुस्लिम समुदायों की समस्याओं की पुनः समीक्षा करने का आग्रह किया गया। इस बैठक के दौरान एक नई दृष्टि बनाई गई, जो आत्म-चेतना और पहचान पर आधारित थी। मुस्लिम इंटेलेक्चुअल्स फोरम ने भारत के विभिन्न शहरों और कस्बों में आगे की बैठकें आयोजित कीं। सितंबर 1997 में, पहली बार, पूर्व और वर्तमान मुस्लिम सांसदों का एक समूह मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन को संबोधित करने के लिए एकत्र हुआ। राज्य में मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता बढ़ाने और राज्य की कल्याण योजनाओं के बारे में मुस्लिमों में जागरूकता फैलाने के लिए राजस्थान के जयपुर में 'माइनॉरिटीज विकास मंच' (फोरम) जैसी क्षेत्रीय पहलों की शुरुआत की गई। राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा आयोजित 'मुस्लिम महिलाओं की सार्वजनिक सुनवाई' ने मुस्लिम महिलाओं के सामने आने वाली आर्थिक समस्याओं को उजागर किया। "इन महिलाओं की प्रमुख चिंता उनके बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधाओं की कमी थी। अन्य समस्याओं में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, स्वच्छता की कमी, आवास की कमी और व्यावसायिक अवसरों की कमी शामिल थीं।" इसके अलावा, मुंबई में मुस्लिम महिलाओं, वकीलों और मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के सदस्यों ने एक मॉडल निकाहनामा (विवाह अनुबंध) तैयार करने पर काम किया, जिसमें महिलाओं के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए न्यूनतम शर्तों का उल्लेख किया गया। उनका उद्देश्य इस निकाहनामा को मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड से चर्चा के लिए प्रस्तुत करना था। मुंबई में राष्ट्रीय महिला आयोग के सहयोग से मुस्लिम महिलाओं पर एक सेमिनार आयोजित किया गया, जिसमें मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड से बातचीत करने और मुस्लिम पर्सनल लॉ में सुधार की आवश्यकता का समर्थन करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया। चूंकि स्वतंत्रता के बाद भारतीय मुस्लिम पर्सनल लॉ में कोई सुधार नहीं हुआ है और मुस्लिम समुदाय का एक राजनीतिक रूप से प्रभावशाली वर्ग बदलाव का विरोध कर रहा है, यह एक महत्वपूर्ण विकास है। यह मुस्लिम महिलाओं और पुरुषों की उस दृढ़ता का प्रतीक है, जो वर्तमान कानूनों को चुनौती देने और महिलाओं के अधिकारों पर विचारों को फिर से परिभाषित करने के लिए तैयार हैं, जो सीधे तौर पर मुस्लिम महिलाओं और इस्लाम पर चल रहे वर्तमान बहस से जुड़े हुए हैं।

REFERENCES

अंसारी, I.A., (सं.), भारत में मुस्लिम स्थिति, ढाका, एकेडेमिक पब्लिशर्स, 2022।

बोस, S., और आयशा, J., (सं.), राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, विकास: भारत में राज्य और राजनीति, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2023।
ब्रास, P., स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीति, नई दिल्ली, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2022।
महिला उत्पीड़न के सभी रूपों के उन्मूलन पर सम्मेलन (CEDAW), जिनेवा, संयुक्त राष्ट्र जन सूचना विभाग।
न्यायमूर्ति बी.एन. श्रीकृष्ण आयोग की रिपोर्ट: दिसंबर 2022 - जनवरी 2023 में मुंबई में हुए दंगों की जांच, मुंबई, सबरंग कम्युनिकेशंस और पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2022।
इकॉनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली ऑफ इंडिया, 2 जून 2023।
इंजीनियर, I., सूरत दंगे (बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद*):* जांच और विश्लेषण, समाज और धर्मनिरपेक्षता के अध्ययन के लिए केंद्र, 2022।
फ्रंटलाइन, 5 नवम्बर 2023।
गांगोली, G., कानून पर मुकदमा: समान नागरिक संहिता पर बहस, मुंबई, अक्षरा पब्लिकेशन्स, 2022।
भारत में मुस्लिम महिलाओं की स्थिति: सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टिकोण, नई दिल्ली, महिला अध्ययन संस्थान, 2023।
शर्मा, A., और कपूर, R., (सं.), भारत में धर्मनिरपेक्षता और अल्पसंख्यक अधिकार, दिल्ली, जय प्रकाशन, 2022।
ज़ैदी, H., भारतीय मुस्लिम समाज: एक सांस्कृतिक और सामाजिक विश्लेषण, लखनऊ, समाजिक अनुसंधान संस्थान, 2023।
भारत में धार्मिक भेदभाव और महिलाओं की अधिकारिता पर संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट, न्यू यॉर्क, संयुक्त राष्ट्र महिला संगठन, 2022।
शाह, S., इस्लाम और महिलाओं के अधिकार: एक ऐतिहासिक विश्लेषण, मुंबई, आई.बी.टी. पब्लिशर्स, 2022।